Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

* Vol-3* *Issue-9* *September 2026*

www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

जैन दर्शन में वर्णित अनेकान्तवाद का तत्त्वमीमांसीय विवेचन

डॉ० रामधनी राम

सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

Article Info: *(Recieved- 03/07/2026, Accept- 10/08/2026, Published- 05/09/2026)*

DOI- 10.70650/rvimj.2026v3i9002

जैन दर्शन तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से वास्तववाद और सापेक्षवादी बहुत्ववाद को स्वीकार करता है, जिसे अनेकान्तवाद कहा जाता है। 'अनेकान्त' पद में जो 'अन्त' शब्द है उसके दो अर्थ है– वस्तु और धर्म। इसलिए अनेकान्त का अर्थ होता है कि इस जगत् में अनेकानेक (अनन्त) वस्तुएं है और प्रत्येक वस्तु के अनेकानेक (अनन्त) धर्म हैं। तत्त्व को जैन दर्शन में अनन्तधर्मात्मक माना गया है।[1] वस्तु में एक साथ सत्–असत्, भाव–अभाव आदि विरुद्ध धर्म विद्यमान होते हैं, जिसका परिज्ञान हमें एकान्त दृष्टि से नहीं हो सकता, उसके लिए तो अनेकान्त दृष्टि होनी चाहिए। कोई भी वस्तु सर्वथा सत् अथवा असत् नहीं होती, क्योंकि किसी भी वस्तु का सर्वथा एकरूप होना नितान्त असंभव है। समस्त वस्तुएँ किसी दृष्टि अथवा अपेक्षा से ही सत् अथवा असत् प्रतीत होती हैं। पदार्थ का यह स्वभाव ही है कि वह एक धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण करता है। प्रत्येक पदार्थ जहाँ अपने स्वरूप की अपेक्षा सत् है वहीं पररूप की अपेक्षा असत् भी है। सत्–असत्, भाव–अभाव, शाश्वत–उच्छेद, नित्य–परिणामी आदि विरोधी प्रतीत होते हैं परन्तु इन विरोधी धर्मो का जैसा समन्वय अनेकान्तवाद में प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। किसी एक वाद या दृष्टि की शरण ग्रहण करना संकीर्णता है, परन्तु अनेकान्तवाद से विरोधी धर्मों का समन्वय करना उसके विशाल दृष्टि तथा उदार विचार का परिचायक है। ''अनेकान्त वस्तुतः दो एकान्तवादी दृष्टियों को मिलनेवाली एक मिश्रित दृष्टि मात्र नहीं है बल्कि यह एक स्वतंत्र दृष्टि है, जिसके द्वारा वस्तु का पूर्ण स्वरूप प्रतिभासित होता है।''[2] जैन दर्शन के इसी सापेक्षवादी, उदारवादी और समन्वयवादी दृष्टि पर प्रकाश डालना प्रस्तुत आलेख का मुख्य प्रयोजन है।

जैन मत में पदार्थ त्रिलक्षण सम्पन्न है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों गुण विद्यमान है।[3] जहाँ ध्रौव्य नित्यता का परिचायक है वही उत्पाद और व्यय अनित्यता के परिचायक हैं। प्रत्येक पदार्थ द्रव्य रूप से नित्य है परन्तु पर्याय रूप से अनित्य है। पदार्थों के कुछ धर्म आवश्यक, अनिवार्य और अपृथक् होते हैं जिन्हें उनसे अलग नहीं किया जा सकता। ये स्वरूप–धर्म कहे जाते हैं। साथ ही पदार्थों के अनेक धर्म आगन्तुक होते हैं। जो उनमें आते–जाते रहते हैं। ये धर्म पर्याय कहे जाते हैं। इसीलिए द्रव्य का लक्षण किया गया है कि 'द्रव्य, गुणपर्याय वाला होता है।4 जैन मत का मानना है कि द्रव्य दृष्टि से एकता, नित्यता और जाति तथा पर्याय दृष्टि से अनेकता, अनित्यता और विशेषता सिद्ध है। इसलिए दोनों के साथ–साथ रहने में कोई विरोध नहीं माना जा सकता। उदाहरणार्थ, स्वर्णपिण्ड का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार आकार में परिवर्तन होता रहता है परन्तु द्रव्य तो वही रहता है। अतः पदार्थ, द्रव्य–दृष्टि से नित्य और पर्याय–दृष्टि से अनित्य सिद्ध होता है। यही पदार्थ का नित्यानित्यात्मक स्वभाव है। इस नित्यानित्यात्मक स्वभाव वाले जगत् में यदि कोई पदार्थ के एक अंश का ही उसका सम्पूर्ण स्वरूप मान लेता है तो वह एकान्तवादी है। इसमें हमें वस्तु का सही ज्ञान नहीं हो सकता। वस्तुतः पदार्थ के अनन्त गुणपर्याय हैं। अतः अनेकान्तवाद सत्य है। इस अनेकान्तवाद से ही परस्पर विरोधी ध र्मों का सही मूल्यांकन सम्भव है। एकान्त और अनेकान्त में मौलिक भेद यह है कि एकान्त 'ही' प्रतीक है और अनेकान्त 'भी' का। जहाँ 'ही' का आग्रह होता है वहाँ संघर्ष का जन्म होता है और जहाँ 'भी' का आग्रह होता है वहाँ समन्वय की धारा फूटती है। अर्थात् अनेकान्त दृष्टि हमें एकांगी विचार से बचाकर सर्वांगीण विचार के

लिए प्रेरित करती है। उल्लेखनीय है कि समस्त पदार्थ को अथवा एवं पदार्थ के ही सारे धर्मों को जानना सामान्य मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि हम किसी एक समय में कुछ पदार्थों को और उनके कुछ धर्मों को ही जान सकते हैं। जो एक पदार्थ के सारे धर्म को जानता है वह सर्वज्ञ– केवली कहलाता है। सर्वज्ञ न केवल एक वस्तु के सारे धर्मों को जानता है वरन् वह समस्त वस्तुओं के समस्त धर्मों को जानता है।[5]

अनेकान्तवाद के सन्दर्भ में स्याद्वाद का उल्लेख न केवल प्रासंगिक है वरन् अपरिहार्य भी है क्योंकि स्याद्वाद भाषा की वह निर्दोष प्रणाली है जिसके द्वारा अनेकान्तवाद का समर्थन किया जाता है।[6] एक प्रकार से अनेकान्तवाद और स्याद्वाद दोनों एक ही हैं क्योंकि दोनों शब्दों के पीछे एक ही हेतु है और वह है– अनेकात्मकता।[7] साधारणतया जैन मत यह मानता है कि ज्ञान–विषयक वाक्य तीन प्रकार के होते हैं– दुर्नीति या दुर्णय, नय और प्रमाण। अनन्तधर्मात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में यह कथन है कि 'अमुक वस्तु ऐसी ही है'' दुर्णय या दोषयुक्त नय है, क्योंकि अनन्तधर्मात्मक वस्तु के आंशिक और सापेक्ष सत्य को यहाँ पूर्ण और निरपेक्ष सत्य मान लिया गया है। किसी वस्तु के सम्बन्ध में यह कहना कि ''अमुक वस्तु ऐसी है'' नय कहलाता है। नय वस्तु के किसी एक धर्म का विधान करता है, साथ ही साथ उनके अन्य धर्मों का निषेध भी नहीं करता। अभिप्राय यह है कि अनन्तधर्मात्मक वस्तु के एक धर्म के ज्ञान को और उस ज्ञान की भाषा में अभिव्यक्ति को नय कहते है।8 ''नय का सिद्धान्त अथवा पृथक्–पृथक् दृष्टिकोणयुक्त पदार्थों का ज्ञान जैन दर्शन के तर्कशास्त्र का एक अपना निजी एवं विशिष्ट लक्षण है। नय एक दृष्टिकोण है जिसके आधार पर हम किसी पदार्थ के विषय में कथन करते हैं। किसी विशेष दृष्टिकोण को अपनाने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम अन्य दृष्टिकोणों को अपनाने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम अन्य दृष्टिकोणों का निराकरण करते हैं। किसी विशेष उद्देश्य को लेकर यह मत की सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है, उतना ही अधिक कार्यसाधक हो सकता है जितना यह मत कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।''9 तथापि नय में चूंकि एकदेश या आंशिकता को स्पष्ट रूप से प्रकाशित नहीं किया गया है इसलिए यह प्रमाण नहीं है। जब हम किसी वस्तु के विषय में यह कथन करते हैं कि ''स्यात् अमुक वस्तु ऐसी है'' तब यह ज्ञान प्रमाण कहलाता है। क्योंकि इसमें ज्ञान की आंशिकता और सापेक्षता तथा एकान्तिकता का विध ाान करता है, जो असत्य और भ्रामक है। जैन मत स्पष्टतः उद्घोष करता है कि धार्मिक संघर्ष और दार्शनिक विरोध इसी निरपेक्ष एकान्तवाद के परिणाम है। 'स्यात्' पद वाक्य के उस विषय को निकाल फेंकता है जिससे अहंकार और पक्षपात का सृजन होता है। केवल अपने द्वारा स्थापित आंशिक सत्य के निरपेक्ष सत्य मानकर अन्य के द्वारा स्थापित आंशिक सत्य का निषेध उसी प्रकाश विरोध को जन्म देता है जिस प्रकार हाथी के स्वरूप–निर्णय में अंधे परस्परिक कलह करते हैं।

यहाँ 'स्यात्' पद का अर्थ समझना आवश्यक है। चूंकि जैन मतानुसार वस्तुओं के अनन्त धर्म है अतः उसके प्रतिपादन की शैली भी ऐसी ही होनी चाहिए जिससे वस्तु की अनन्तधर्मात्मकता का संकेत हो। वस्तुओं के इस अनन्तधर्मात्मकता के संकेत की प्रणाली को ही स्याद्वाद कहा जाता है। कुछ लोगों के अनुसार 'स्यात्' का अर्थ 'शायद' या 'सम्भवतः' है, परन्तु इसे उचित नहीं माना जा सकता। शायद या सम्भवतः में अनिश्चितता का संकेत मिलता है जबकि स्याद्वाद एक निश्चित सिद्धान्त है।10 यह संशय नहीं वरन् सुनिश्चित सिद्धान्त का द्योतक है। इसी प्रकार 'त्यात्' पद का अर्थ 'किसी न किसी प्रकार' अथवा 'पता नहीं कैसे' आदि भी हो सकता है क्योंकि इनमें अज्ञेयवाद की झलक आयी है। वस्तुतः जैन दर्शन में 'स्यात्' पद को 'ज्ञान की सापेक्षता' के अर्थ में प्रयोग किया गया है। अतएव 'स्यात् पद का उचित अनुवाद होगा– 'किसी प्रकार से' अथवा 'सापेक्षतता' अथवा 'किसी दृष्टि विशेष से'। चूंकि हमारे समस्त ज्ञान आंशिक और सापेक्ष होते हैं, अतएव इस तथ्य के प्रकाशन के लिए अपने ज्ञान को भाषा में अभिव्क्त करते समय हमें परामर्श–वाक्य के पूर्व 'स्यात्' पद का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार 'स्यात्' पद सापेक्ष सत्य का सूचक है।11 चूंकि पदार्थों में विरोध धर्म होते हैं इसलिए इन विरोधी धर्मों की विवक्षा स्यात् पद से ही सम्भव है। जब किसी वाक्य में स्यात् पद का प्रयोग किया जाता है तो इसका अर्थ होता कि जिस धर्म की विवक्षा हो रही है वह मुख्य है तथा अन्य धर्म गौण है। अभिप्राय है कि अन्य धर्मों का निषेध नहीं होता वरन् उन्हें अविवक्षित या गौण मान लिया जाता है। इस प्रकार वस्तु के मुख्य एवं गौण दोनों धर्मों का संकेत 'स्यात्' पद से हो जाता है। 'स्यात्' पद जोड़ देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु केवल इसी धर्म वाली नहीं है बल्कि उसमें इसके अतिरिक्त भी अनेक धर्म विद्यमान है। इस प्रकार अनेकान्त एक व्यापक विचार–पद्धति है, जो स्याद्वाद के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।

जैन दर्शन में किसी भी पदार्थ के लिए सापेक्षता के महत्व का ध्यान में रखकर सात प्रकार के वचनों/निर्णयों

का प्रयोग किया गया है। अर्थात् हम किसी भी वस्तु के स्वरूप या धर्म को सात प्रकार के नयों या परामर्शों द्वारा अभिव्यक्त कर सकते हैं। इन्हीं सात प्रकार के वचनों को 'सप्तभंगीनय' कहा गया है। यद्यपि वस्तु के धर्म अनन्त होते हैं तथापि इन्हें व्यक्त करने सम्बन्धी वाक्य केवल सात ही है। अनेकान्तवाद और स्याद्वाद का विस्तृत रूप इस सप्तभंगीनय में ही दृष्टिगोचर होता है। प्रश्नानुसार वस्तुगत किसी भी एक धर्म में विधि और निषेध की कल्पना करना सप्तभंगी कहलाता है। ये सप्तभंगीनय निम्नलिखित हैं–

1. स्यात् अस्ति – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु है।
2. स्यात् नास्ति – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु नहीं है।
3. स्यात् अस्ति च नास्ति – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु है और नहीं भी है।
4. स्यात् अवक्तव्यम् – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु अवर्णनीय है।
5. स्यात् अस्ति व अवक्तव्यम् – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु है और अवर्णनीय है।
6. स्यात् नास्ति च अवक्तव्यम् – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु नहीं है और अवर्णनीय है।
7. स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम् – अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु है और नहीं है और अवर्णनीय है।

जब हम कहते हैं कि 'घड़ा है' तो सामान्यता उसके तीन अर्थ हो सकते हैं, (1) घड़ा है, (2) घड़ा नहीं है, क्योंकि घड़ा एक प्रकार से मिट्टी ही तो है, तथा (3) घड़ा है भी, नहीं भी है, क्योंकि घड़े के अर्थ में घड़ा है, जबकि मिट्टी के अर्थ में नहीं भी है। यदि कोई कहे कि यह तो मिट्टी है, तो उसे निरर्थक नहीं कहा जा सकता। वहीं यदि कोई कहे कि नहीं, मिट्टी है ही नहीं, यह तो घड़ा है, क्योंकि बाहर पड़ी मिट्टी और इसमें भेद स्पष्ट है, तो इसे भी निरर्थक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार सत्य के सामान्यतः तीन भंग या कोण दृष्टिगोचर होते हैं। लेकिन जैन दर्शन की उदारता यह है कि यहाँ इसे सप्तभंगी बनाया गया और कहा गया कि सत्य इतना जटिल है कि इस त्रिभंगी मात्र से उसकी व्याख्या सम्भव नहीं है। कोई कहे कि घड़ा है तो हम कहते हैं कि हाँ, घड़ा है, किन्तु आग्रहपूर्वक नहीं कह सकते कि 'हाँ, घड़ा है'। हमें कहना पड़ता है कि 'स्यात् घड़ा है', क्योंकि दूसरी सम्भावना भी है। यदि कोई कहे कि मिट्टी ही तो है तब सिद्ध करना कठिन हो जाएगा कि घड़ा कहाँ है। तब हमें कहना पड़ता है कि 'स्यात् घड़ा है', 'स्यात् घड़ा नहीं है', 'स्यात् घड़ा है भी और नहीं भी है'। जैन दर्शन ने इसको आगे बढ़ाते हुए कहा कि 'स्यात् कवक्तव्य है' अर्थात् इस छोटे से अस्तित्व (घड़ा) में कुछ ऐसा भी है जिसे नहीं कहा जा सकता। क्योंकि घड़ा अणु है, परमाणु है, इलेक्ट्रान, प्रोटॉन और विद्युत आदि भी है, तो क्या इतने सारे को एकसाथ कहना सम्भव है। इसके अतिरिक्त घड़े में जो 'है–पन' (अस्तित्व) है वह तो अनिर्वचनीय है ही, क्योंकि 'है' की क्या परिभाषा हो सकती है? जैन दर्शन ने सत्य के इसी दृष्टिकोण से 'स्यात् अवक्तव्यम्' का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि यदि घड़ा जैसी छोटी वस्तु भी इतनी ज्यादा जटिल है कि उसे अनिर्वनीय कहना पड़ता है, तब तो पारमार्थिक जगत् के सत्य के साथ–साथ किसी भी प्रकार के सत्य के उद्घाटन या प्रस्तुतीकरण में 'सत्य' ऐसा ही है' एक प्रकार का दुराग्रह या मिथ्यालाप के अलावा कुछ नहीं हो सकता। इसी प्रकार पांचवां भंग कहा गया है कि 'स्यात्' है और अनिर्वनीय है'। छठा है 'स्यात् नहीं और अनिर्वचनीय है'। और सातवां 'स्यात् है भी, नहीं भी है और अनिर्वचनीय है'। इस प्रकार सत्य को सात दृष्टियों (भंग) से देखा जा सकता है। जो एक ही दृष्टि का आग्रह करता है वह अन्य छः अर्थों में असत्य का दावा करता है और सीमा के बाहर जा रहा है, क्योंकि अन्य छः दृष्टियां और हो सकती हैं। इन सात भंगों में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ भंग ही मूल भंग है। शेष चार भंगों में तीसरा, पांचवां और छठवां भग द्विसंयोगी हैं तथा सातवां भंग त्रिसंयोगी है।

यद्यपि धर्मकीर्ति, शंकराचार्य प्रभृति दार्शनिकों ने जैन दर्शन के अनेकान्तवाद और स्याद्वाद पर कुछ आपत्तियाँ प्रस्तुत की है परन्तु उससे इसका महत्व कम नहीं होता। वस्तुतः अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और सप्तभंगी नय के द्वारा अननतधर्मात्मकता की व्याख्या की गई है। जैन मत कहता है कि यदि स्याद्वाद के रहस्य को हम थोड़ा भी समझ ले तो किसी भी वैचारिक संघर्ष को स्थान न मिल पाएगा। वैचारिक मतभेद हो सकते हैं क्योंकि सबकी दृष्टि अलग–अलग है, परन्तु तब हम पूर्वाग्रही बनकर लड़ न सकेंगे। जो एकान्त के प्रति आग्रहशील है और दूसरे के सत्यांश को स्वीकारने के लिए तत्पर नहीं है वह तत्त्व को यथार्थ रूप से प्राप्त नहीं कर सकता। अतः एकान्त के मलीन पोखर से निकलकर अनेकान्त के शीतल सरोवर में डुबकी लगाना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि गोपी नवनीत तभी पाती है जब यह मथानी की रस्सी के एक छोर को खींचती है और दूसरे छोर को ढीला छोड़ती

है।14 इस प्रकार जब सत्य एक दृष्टिकोण को गौण करके दूसरे दृष्टिकोण को प्रधानता दी जाती है तभी सत्य के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन हो पाता है। अन्ततः कहा जा सकता है कि जैन दर्शन का यह सिद्धान्त सभी विचारधाराओं में समन्वय करने का एक सशक्त माध्यम है जो दूसरों के प्रति सहिष्णुता, उदारता और सापेक्षता की मौलिक शिक्षा देता है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ–सूची

1. अन्ययोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका, पृ. 22, जैनदर्शन, 1955, श्री गणेश प्रसाद, वर्णी संस्थान, वाराणसी।
2. सं. डॉ. नन्दकिशोर देवराज, भारतीय दर्शन, पृ. 127 – 2002, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
3. तत्त्वार्थ सूत्र 6/29 – पं. सुखलाल संघवी– 1952– तत्त्वार्थसूत्र 6/29, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी।
4. तत्त्वार्थ सूत्र 5/379 – पं. सुखलाल संघवी– 1952– तत्त्वार्थसूत्र 6/29, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी।
5. षड्दर्शन समुच्चय टीका, पृ. 222, 1944, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी (हरिभद्र सूरि)
6. जैन दर्शन– पं. महेन्द्र कुमार जैन– 1955– गणेश प्रसाद, वर्णी संस्थान, वाराणसी।
7. स्याद्वादमंजरी, 5– श्री मल्लिषेण सूरि– 1912– मोतीलाल वराणसी दास, दिल्ली।
8. न्यायावतार, 29, आचार्य सिद्धसेन दिवारक– 1928, एल.पी. वैद्य।
9. एम. राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन, भाग– 1, पृ. 242 – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1927
10. आप्तमीमांसा– 103– आचार्य समन्त भद्र– 2010, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
11. आप्तमीमांसा– 10. 112– आचार्य समन्त भद्र– 2010, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

Cite this Article

'डॉ० रामधनी राम', "जैन दर्शन में वर्णित अनेकान्तवाद का तत्त्वमीमांसीय विवेचन", Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:3, Issue:9, September 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."